IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आदिवासी आन्दोलन में राष्ट्रवाद(विरसा और जात्रा आन्दोलनों के संदर्भ में)

बिनोद कुमार
रीसर्च स्कॉलर,
इतिहास विभाग
जे. पी. यूनिवर्सिटी, छपरा

अब्सट्रैक्ट

1857 के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के पूर्व से ही संयुक्त बिहार मे जो आदिवासी आन्दोलन छिटफुट ढंग से चल रहा था उसकी परिणिति संथाल और उराँव आन्दोलन के रूप में एक सशस्त्र क्रांतिकारी आन्दोलन के रूप में हुई । इन आन्दोलनों के नेता क्रमशः बिरसा और जात्रा ने इसे वर्गीय आन्दोलन का रूप दिया। आन्दोलन ब्रिटिश राज और उसके समर्थक जमीन्दारो और सूदखोरो महाजनों के शोषण के खिलाफ शोषित आदिवासी समुदाय का विरोध था। अंग्रेजी राज के नए भू–प्रबंधन में, जो इग्लैंण्ड की जमीन्दारी प्रथा में थोड़ा सा हेरफेर करके भारत मे लागू कर दी गई थी–नए आर्थिक वर्गों, जमीन्दार वर्ग का उदय हुआ जो प्रायः गैर आदिवासी समूह के लोग थे और उन्होंने आदिवासियों की जमीनों को हड़पना शुरू किया। यह समुदाय ब्रिटिश राज के लिए सामाजिक आधार बना हुआ था और अंग्रेजी राज इनकी मदद किया करता था ।

ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथों से भारत की सत्ता का ब्रिटिश संसद के हाथों में 1858 में जाने के बाद ब्रिटिश राज का चरित्र भी व्यापारिक पूँजी के राज से संक्रमण कर औद्योगिक पूँजी के राज में आ गया । जिसने शोषण के उन्नत तरीकों को अपनाकर मशीनों की मदद से शोषण को दुरूह और कई गुणा बढ़ा दिया । कांग्रेस की स्थापना 1885 में होने के बाद इसका नरम दली नेतृत्व ब्रिटिश राज को भारत की दुर्दशा का कारण नहीं मानकर भारत की गरीबी, अशिक्षा, पिछड़ापन आदि को कारण मानकर यह उम्मीद लगाए बैठा था कि भारत की इन समस्याओं का समाधान अंग्रेजी राज की मदद से ही किया जा सकता था। आदिवासी जगत इससे भिन्न, अंग्रेजी राज को ही भारत की बर्वादी का कारण मानता था और उससे मुक्ति के लिए संघर्ष का रास्ता चुना था । इसी बदलाव के परिप्रेक्ष्य मेंयह लेख बिरसा आन्दोलन की व्याख्या है ।

धुरीन (Key) *शब्द*

व्यापारिक पूँजी का शासन, औद्योगिक पूँजी का शासन

शोषण, वर्गीय, सामाजिक–आर्थिक, मिशनरी आदि ।

भूमिका :

1857 के पूर्व के कोल और संथाल विद्रहों को ब्रिटिस सरकार ने पुलिस और फौजी ताकत का इस्तेमाल कर दवा दिया था। मगर 1858 के साथ जो नई आर्थिक एवं राजनीतिक बदलाव ब्रिटिश शासन के चरित्र में आया उसने आदिवासी आन्दोलन को पुनः जागृत कर दिया । 1858 में ब्रिटिश राज के चरित्र में बदलाव यह आया कि अब भारत का शासन ईस्ट इन्डिया कम्पनी के हाथों से निकल कर इंग्लैंड की संसद के हाथों में चला गया । यह बदलाव ब्रिटिश ईस्टइंडिया कम्पनी के राज्य, जो वणिक पूँजी (Mercantile Capital)का शासन था उसका चरित्र बदल कर बिटिश औद्योगिक पूँजी (Industrial Capital) के शासन का हो गया । इंग्लैण्ड की संसद ब्रिटिश पूँजी का प्रतिनिधित्व करती थी जिसका समझौता ब्रिटिश सामंतवाद के साथ होने का नतीजा राजा का उसका प्रधान होना था । इस बदले हुए शासन तंत्र के चरित्र के कारण भारत के शोषण का जो स्वरूप बदला वह पीछे के शोषण के स्वरूप से ज्यादा दुरूह और कठोर था। जब मशीनों की भूमिका उत्पादन प्रक्रिया में शोषण को दुरूह रूप में लागू कर रही थी । इसका प्रभाव आदिवासी जगत पर भी पड़ रहा था। गरीबी, बेरोजगारी, करों और टैक्सों का भार तो आदिवासी समाज को तबाह कर ही रहा था इसके साथ–साथ इंग्लैंड के अनुभव के आधार पर यहाँ भी ब्रिटिश राज ने भारतीय सामंत वर्ग के साथ समझौता करके चल रहा था।

1885 में हलांकि कांग्रेस का गठन हो गया था, मगर कांग्रेस से अपने गठन के बीस वर्षों बाद तक कोई राजनीतिक, सामाजिक या आर्थिक आंदोलन नहीं किया सिवा इसके कि गर्वनर जेनरल की काउन्सिल में भारतीयों की समस्या की मांग उठाने के, और वह भी ब्रिटिश संवैधानिक ढाँचे के अन्दर ही । इन सारी घटनाओं के परिणाम स्वरूप आदिवासी जगत में 1881 से ही विरोध की जो ज्वाला उठ रही थी, वह 1895 तक कई छोटे–बड़े आन्दोलनों को जन्म देती रही और सरकारी दमन के द्वारा उन्हें दबा दिया जाता रहा। दबाव का सिलसिला भी 1858 के पूर्व की तुलना में ज्यादा व्यापक और कठोर रूप में आता रहा । कांग्रेस ने भी आदिवासी मांगों को कभी भी अपने एजेन्डा में शामिल नहीं कर उसे नेतृत्व देने का प्रयास तक नहीं किया । तत्काल के लिए विरसा के नेतृत्व में एक मजबूत आन्दोलन शुरू हो गया । उस काल यानि कांग्रेस के गठन के बाद करीब 20 वर्षों तक कांग्रेस का नरम दली तबका, जो नेतृत्व में था और आदिवासियों की सोच में बुनियादी अन्तर रहा । कांग्रेस का नरमदली तबका भारत की गरीबी और बदहाली का कारण अंग्रेजी राज को नहीं समझता था,बल्कि भारत की अशिक्षा, गरीबी, पिछड़ापन आदि को कारण मानता था और समझता था कि इन सबों को दूर करने में अंग्रेजों की मदद जरूरी है। फिरोजशाह मेहता आदि के उस काल के अनेको बयान इस समझ की तस्दीक करते हैं। मगर आदिवासी जमात की समझ इससे भिन्न थी। हलांकि अदिवासी आन्दोलन भी तिलक के गरमपंथी तबके की ही तरह धार्मिकता से जुड़ा हुआ था मगर उसमें अंग्रेजी राज और इसके समर्थक जमीन्दारों और सूवदखोरो महाजनों से मुक्ति पाने का भाव मजबूती से सन्निहित था। आदिवासियों की स्पष्ट समझ थी कि उनकी आर्थिक, सामाजिक दुर्दशा का कारण अंग्रेजी राज और उसके समर्थक जमीन्दारों और

महाजन के कारण ही है। 19वीं सदी के आखिरी दशकों में संथाल परगना शोषकों के रिगफ्त में आ गया था। प्रायः सभी संथाल परिवार अपनी जमीनों से बेदखल कर दिए गए थे और भूखमरी के कगार पर आ गए थे । इसी प्रकार संथालों के बीच से एक 29 वर्षीय युवक, विरसा जो थोड़ी अंग्रेजी जानता था और जर्मन इसाई मिशनरी से कुछ धार्मिक शिक्षा पाई थी,मगर पुनः अपने पैतृक धर्म में लौट आया था, सामने आया। इसे एक नए धर्म के प्रतिपादन की प्रेरणा जगी और इसने अपने नए धर्म के कार्यक्रम को प्रस्तुत करते हुए कहा कि उसे इस नए धर्म के प्रचार का आदेश सींगबोंगा से मिली थी । उसने अपने अनुनायियों को कई देवी–देवताओं की पूजा करना छोड़ने और एक ही सींगबोंग की अराधना करने, सादा जीवन बिताने, हडिया समेत सभी तरह के मादक पदार्थों, मांस–मछली आदि को पीने और खाने से मना किया और जनेउ धारण करने को कहा । कुछ ही दिनों में उसके समर्थकों की संख्या काफी हो गई और कुछ इसाई धर्म वाले भी इसके समर्थकों में शामिल हो गए ।[1] इसके समर्थक इसे पैगम्बर, भगवान, धरती आबा या विश्व पिता का अवतार मानते और समझते कि इसे कुछ नैसर्गिक शक्तियाँ प्राप्त है ।

बिरसा के आन्दोलन का शुरूआती चरण–

बिरसा के अनुयायियों की संख्या और उनमें उत्तेजना तेजी से बढ़ रही थी। बिरसा के संदेश और सरकारी विसंगतियों का मेल कही नहीं था । इस कारण सरकार ने बिरसा के प्रचार में अंग्रेजी राज के खिलाफ एक आन्दोलन के स्वरूप की तैयारी का आभास किया और मुण्डा राज्य के स्थापना की आशंका का अनुमान लगाया। इस कारण सरकार ने इस आन्दोलन को शुरू में ही दबा देने का संकल्प किया । इस संकल्प के साथ राँची जिला का आरक्षी अधीक्षक स्वयं चल कद गया[2] और जहाँ बिरसा सोया हुआ था, उसके आस–पास के लोंगों के जाने बिना बिरसा के मूँह में कपड़ा ठूँस कर उसे हाथी पर बैठा कर राँची लाया । उसके अनुयायियों को कानों कान खबर तक नहीं हुई। जिस समय बिरसा को जेल के अन्दर लाया जा रहा था उसी समय जेल की एक दिवार गिर पड़ी[3] ।उसके अनुयायियों के अनुसार यह दिवार ठीक उसी समय गिरी जब उसके नेता को जेल के अन्दर लेजाया जा रहा था। राँची के पुलिस उपायुक्त के अनुसार लोगों की जानकारी में बिरसा की गिरफ्तारी से भारी खून–खराबा होने का खतरा था, इसलिए गिरफ्तारी रात में चुपचाप की गई।[4] एक अन्य दस्तावेज में लिखा है कि बिरसा ने अपने समर्थकों के बीच प्रचारित करना शुरू किया कि जबतक विदेशी शासन और उसके समर्थक जमीन्दारों से आदिवासी अपनी मुक्ति नहीं करा लेते तब तक आदिवासियों का कल्याण नहीं है । उसने इसाई मिशनरियों के खिलाफ भी संगठित आन्दोलन चलाने की प्रेरणा अपने समर्थकों को दिया। कुछ प्रमुख इसाई नेताओं के निवेदन पर बिरसा के खिलाफ कार्रवाई की गई । एक दुविधापूर्ण झड़प के बाद एक गिरफ्तारी का वारंट जारी हुआ और चलकद में बिरसा को गिरफ्तार किया गया और राँची लाया गया । 24 अक्टूबर को जब मुकदमे की सुनवाई शुरू हुई तब एक जर्बदस्त प्रदर्शन हुआ, कुछ लोगों को गिरफ्तार किया गया, मगर बाद में छोड़ दिया गया । इसके बाद बिरसा को पुनः राँची लाया गया और उसके 15 सहयोगियों[5] के साथ राँची के उपायुक्त की अदालत में नवम्बर, 1895 को मुकदमें की सुनवाई शुरू हुई । मुकदमा भारतीय

दण्ड संहिता की धारा 505 और कुछ अन्य धाराओं के तहत चलाया जा रहा था। इसमें प्रत्येक को दो–दो साल की सजा सुनाई गई । इसके अतिरिक्त बिरसा को 50 रु० जुर्माना और न देने पर उसे छः माह की कड़ी कैद भोगने का फैसला किया गया शेष अभियुक्तों को 20–20 रुपये का जुर्माना और जुर्माना न दने पर तीन–तीन माह की कड़ी सजा भुगतनी पड़ती ।

राजनीतिक उद्देश्य :

बिरसा के नेतृत्व में चलाए जा रहे आन्दोलन के राजनीतिक महत्व को बताते हुए राँची के उपायुक्त ने अपने फैसले में जो कारण बताया वे थे मुन्डा कविलाइयों में फैली अशान्ति कविलाइयों द्वारा फैलाई गई अशान्ति थी, इसको कविलाइ नेता द्वारा भ्रामक प्रचार द्वारा रहस्यमय ढंग से प्रसारित किया जाता है। जिस आंतकवाद को कुछ दिन पूर्व दबा दिया गया था उसकी पुनरावृत्ति से यह प्रमाणित होता है कि यह एक आकस्मिक आन्दोलन नहीं, बल्कि एक राजनीतिक आन्दोलन है, जिसका लक्ष्य मुण्डा राज्य की स्थापना करना है । यह प्रचार देश में राजद्रोहात्मक प्रचार करने में सफल हो गया था। इस कारण अभियुक्तों को कड़ी सजा देने की जरूरत है।[6]

महारानी विक्टोरिया के शासन के हीरक जयन्ति के अवसर पर 1898 के प्रारम्भ में ही बिरसा उसके 15 सहयोगियों को हजारीबाग जेल से रिहा कर दिया गया। जेल से बाहर आने पर बिरसा ने अपनी क्रांतिकारी कार्रवाइयों को देगुने उत्साह से शुरू किया और राँची के उपायुक्त की इस समझ को गलत प्रमाणित कर दिया कि विद्रोह की लहर शान्त करने में प्रशासन सफल रहा। अब बिरसा अपने अनुयायियों के साथ गाँव–गाँव में घुमता, सभाएँ एवं बैठक करता, अकाल भूखमरी, बीमारी से पीड़ित लोगों की मदद करता और अन्य सामाजिक कार्यों में अपने को लगाता। इस कारण लोगों में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ी और लोग उसे अपना हितैषी मानने लगे । अब बिरसा को एक सेना गठित करने की जरूरत महसूस हुई जो जनसंघर्षों के लिए आवश्यक थी। भूखमरी और बीमारी तथा अकाल पीड़ित आदिवासियों की मदद में मिशनरियाँ भी आगे आई, परन्तु इन्होंने इस मौके को धर्म परिवर्तन कराने के उद्देश्य से किया। बिरसा ने गाँव–गाँव घुमकर आदिवासी युवाओं की भर्ती शुरू की और अपने नजदीकी सहयोगी गया मुण्डा को उसने इन नवयुवकों के प्रशिक्षण का कार्यभार दिया। प्रशिक्षण में परम्परागत हथियारों को चलाने की ट्रेनिंग दी जाती थी जिनमें तीर धनुष, तलवार चलाने आदि का प्रशक्षिण था। गया मुण्डा को बिरसा दल का मंत्री और सेनापति बनाया गया । खूँटी और चक्रधर पुर के कई दर्जन गाँवों की बिरसा ने यात्रा की, घने जंगलों और दुर्गम पहाड़ियों को पार करके वह यात्रा कर रहा था। खूँटी बिरसा दल का मख्यालय बनाया गया। आदिवासियों के स्वतंत्रता संघर्ष का नेतृत्व करने के लिए जिन और व्यक्तियों को जिम्मा सौंपा गया था उनमें थेः–

देमका मुण्डा (बड़ी मौना), पनाउ मुण्डा (केटिंगकल), सुन्दर मुण्डा (मणिबेड़), त्रिपु मुण्डा (रूई टोला), जोहन मुण्डा (बुरजा), दुखन स्वासी (गोवा), हाथी राम मुण्डा (गुटेहसटू) और रिसा मुण्डा । इस

क्रांतिकारी दल का मुख्यालय खूँटी था और राँची, चक्रधरपुर, बुदु तमार, कारा तोरपा, वसिया, सीसई और अन्य जगहों पर प्रशिक्षण केन्द्र खोले गए ।

अब आन्दोलन का स्वरूप क्रांतिकारी, राजनीतिक स्वरूप ग्रहण कर लिया था। 1899 के अन्त तक बिरसावादियों ने अनवरत संगठित और योजनावद्ध तरीके से काम किया था और अनेकों सभाएँ की थी । उनकी सभाएँ किसी सुनसान पहाड़ी पर रात में हुआ करती थी । एक सरकारी प्रलेख में बताया गया है कि उनकी सभाएँ दुम्बरि पहाड़ी पर पिछले अक्टूबर में क्रिसमस के एक पखवारा पूर्व बांटोडीह में, अक्टूबर या नवंबर में मारी हाट, दिसम्बर के मध्य में संताल, कुसुमटोली (पोजे का एक टोला) क्रिश्मस के दो दिन पहले कोदघरा, क्रिसमस के एक दिन पूर्व बीचा कुटी और क्रिसमस के बाद बांटोडीह के गोपी मुण्डा के घर पर सभा की गई । डुमरी पहाड़ी की सभा में बिरसा ने लोगों की विभिन्न समस्याओं का उल्लेख किया था और उससे निकलने के लिए संघर्ष करने को कहा । उसका लक्ष्य था अपनी सरकार की स्थापना करना । इस प्रकार बिरसा आन्दोलन राजसत्ता के लिए आन्दोलन का रूप ले लिया था और पूर्णतः एक राजनीतिक आन्दोलन बन गया था जिसका लक्ष्य था सशस्त्र आन्दोलन के साथ सत्ता पर कब्जा करना ।

1899 के बड़ा दिन में तथा उसकी पूर्व संध्या को उनकी कार्रवाइयाँ आरम्भ करने की योजना थी । यह आन्दोलन शोषित आदिवासियों का ब्रिटिश सत्ता और उसके समर्थक भू–स्वामियों, महाजनों और इसी तरह के अन्य शोषक वर्गों के खिलाफ एक हथियारबंद वर्ग संघर्ष था, जिसको हिन्सक कार्रवाइयों में सामने आना था और वह इसी हिन्सा के रूप में सामने आया । कहीं महाजनों और जमीन्दारों का घर लूटा गया तो कहीं शोषकों के घरों को जला दिया गया । मुन्डा के आदेश पर तीन विरसाई जत्थे ने सर्वादा, मुढु और बुरज के इसाई मिशन के भवनों पर जब आक्रमण किया तो एक जत्था के साथ पुलिस का मूठभेड़ हुआ और कुछ पुलिस के जवान मारे गए । तजना नदी के किनारे भी पुलिस और बिरसाइयों के बीच हथियाबंद संघर्ष हुए जिसमें भी पुलिस का पक्ष कमजोर रहा और बिरसाई उपर रहे । राँची, तमार, खूँटी, कारा, बसिया, तोरपा आदि जगहों पर भी छिटफुट झड़पे हुईं

इस सशत्र घटनाओं ने प्रशासन के कान खरे कर दिए थे । इस बीच करीब 300 मुण्डा जवान अपने परम्परागत हथियारों, तीर धनुष, भाला, गड़सा, तलवार आदि से लैस होकर खूँटी थाना पर चढ़ आए और एक सिपाही की हत्या कर दी और अगल–बगल के घरों में, जिसे उन्होंने शोषकों का घर समझा, उन्हें आग के हवाले कर दिया । इस घटना से पुलिस और–प्रशासन और ज्यादा चौकन्ना हुआ और छोटानागपुर के आयुक्त फोरेबेस और राँची के आयुक स्ट्रीटफिल्ड ने तुरंत ही डोरंडा स्थित नेटीव इन्फेन्ट्री के 150 जवानों को लेकर राँची के लिए चल पड़े । जब वे सायको से 3 मील दक्षिण दुमारी पहाड़ी पर पहुँचे तब उनका सामना करीब 2000 मुण्डा युवकों/जवानों से हुआ जिन्होंने वहाँ मोर्चाबंदी कर रखी थी,ढेर सारा खाने का सामान और बर्तन आदि जमा कर रखा था[7] ।

एक सरकारी रिपोर्ट बताती है कि आयुक ने करीब दो घंटों तक उनसे हथियार डालने की अपील करते रहे मगर जब कोई परिणाम नहीं निकला तब उन्होंने गोली चलाने का हुक्म दिया । बिरसाई गहड़ी पहाड़ी के नीचे एक गहरी घाटी में थे । गोली चलने पर वे जंगलों में भाग गए । फिर भी, करीब 200 बिरसाई जवान मारे गए।[8] प्रशासन का दमन इतना कठोर था कि महिलाओं और बच्चों तक की हत्याएँ की गई, लाशों को पहाड़ी दर्रों में योंही फेंक दिया गया और कुछ मृतकों को गुडहाट मे खाई खोद कर गाड़ दिया गया । नृशंसता का आलम यह था कि कई घायलों को जिन्दा ही खाई में गाड़ दिया गया । गुडहाट के एक निवासी श्रीराम मुण्डा के अनुसार उनके ग्राम वासी, जो शहीद हुए थे उनमें हरि मुण्डा, हाथीराम मुण्ड, सगराई मुण्डा, सनुक मुण्डा, लखन मुण्डा, नीबाई मुण्डा, भक्ता मुण्डा, नरसिट मुण्ड, समराई मुण्डा, हुगरा मुण्डा, सनिक मुण्डा, रूस मुण्डा बुगराई मुण्डा, रेपो मुण्डा और डोका मुण्डा थे । इनमें से हाथी राम मुण्डा और सगराई मुण्डा को जिन्दा ही दफना दिया गया था।[9]

9 जनवरी, 1900 के गोली काण्ड के बाद समस्त प्रशासन इस आन्दोलन को दबाने में लग गया, जगह–जगह पुलिस और कार्यपालिका के उच्च पदाधिकारियों की तैनाती की गई । 9 जनवरी, 1900 के गोली काण्ड के समय बिरसा और गया मुण्डा उपस्थित नहीं थे । वे अपने अनुयायियों को संगठित करने के लिए गाँव में घूम रहें थे । गया मुण्डा जब एटके गाँव गया तब वहाँ एक पुलिस दल ने उसे घेर लिया। वह जिस घर में था उसमें तीन पुलिस घुसी और तीनों को तब गोली मार दी गयी। इस बार उस घर में आग लगाई गई और इसके बाद जब गया मुंडा उस घर से निकल रहा था तब उसे गोली मारकर उसकी हत्या कर दी गई । बिरसा पहले सिंहभूम जिला के जमक्रोपाई (चक्रधरपूर) के जंगलों में छिपा रहता था और रात में समीपवर्ती गाँव में जाकर अपने अनुयायियों को संगठन करता रहा । दो वर्षों तक वह पुलिस के हाथों नहीं आया । उसकी कार्रवाइयों का एक केन्द्र रोंगटों भी था । 22 मार्च, 1900 को बिरसा के दो सहयोगी एक जींदाऊ जो छोटानागपुर के लुथड़ी स्कूल में शिक्षक था और दूसरा प्रभुदयाल को लेहरदग्गा में पुलिस ने गिरफ्तार किया और पुलिस संरक्षण में राँची लाया गया, मगर उनका कोई अपराध प्रमाणित न हो सकने के कारण उन्हें रिहा कर दिया गया ।

बिरसा को पकड़ने के लिए सरकारी अभियान जोड़ों से चलाया जा रहा था । सिंहभूम के उपायुक्त ने छोटानागपुर के आयुक्त को पत्र लिखकर[10] बताया कि 15 मार्च से बिरसा को गिरफ्तार करने का प्रयास चल रहा है । उस क्षेत्र में पुलिस के दो दो जत्थे उस सारे इलाकों में पदस्थापित किये गये थे जो नियमित गस्त लगाते, बिरसा के संबंध में पूछताछ करते, मगर उन्हें कोई सफलता नहीं मिली थी ।

छोटानागपुर का आयुक्त स्वयं सिंहभूम के उपायुक्त से मिलकर बिरसा को पकड़ने का प्रबंध किया, वह उत्तर की पहाड़ियों में बिरसा की खोज का प्रबंध किया। अब स्थानीय देशद्रोही पुलिस को इस काम में मदद कर रहे थे । कुछ पड़ोसी गाँव में पदस्थापित अंग्रेज प्रहरियों को सकरा से पश्चिम, करीब डेढ़

किलोमीटर, जंगल मे बिरसा और उसकी पत्नी के आने की सूचना मिली । ये लोग गुप्त रूप से उस स्थान पर पहुँच गए और जब बिरसा, उसकी पत्नी और एक अन्य औरत पेड़ के नीचे गहरी नींद में सोए हुए थे तभी पुलिस के ये लोग उनपर टूट पड़े और बिरसा जबतक अपने हथियारों का प्रयोग करता इन लोगों ने उसे दबोच लिया । 3 फरबरी, 1900 को अपनी पत्नी और एक अन्य महिला के साथ गिरफ्तार कर लिया गया । अब उसे उपायुक्त के पास लाया गया । उसे गिरफ्तार करने वालों को सरकार द्वारा घोषित 500 रुपया इनाम दिया गया और बिरसा को पुलिस संरक्षण में राँची भेज दिया गया । मगर उसकी पत्नी को राँची जाने की अनुमति नहीं दी गई । एक अन्य बयान में कहा गया है कि बिरसा ने सात सिपाहियों का एक मील तक पीछा किया और जब वह थक गया तो कुछ सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया[11] गिरफ्तारी के कुछ ही दिनों बाद 30 मई, 1900 को जेल के भीतर ही वह हैजा से पीड़ित हुआ और 2 जून, 1900 को उसकी मृत्यु हो गई।

इसके बाद बिरसा आन्दोलन को समूल नष्ट कर देने की सरकारी कारवाई चली जो आंतकपूर्ण थी । करीब 150 सशक्त पुलिस बल को विभिन्न इलाकों में भेजा गया, बहुत सारे लोगों को गिरफ्तार किया गया और बहुत सारे लोंगो पर दमनात्मक कार्रवाइयों को कर के डराया गया भयभीत कबिलाइयों ने खास कर मारूबधादा, स्वैकोऔर सर्वादा में इसकी धर्म स्वीकार कर अपनी जान बचाई । बिरसा के अनेकों अनुयायी पकड़ लिये गए और जे. जे. प्लेटेल को उनके मुकदमे की जिले में सुनवाई के लिए विशेष पदाधिकारी नियुक्त किया गया । सिंहभूम जिले में उपायुक्त टॉम्सन इन मुकदमों की सुनवाई का प्राधिकार दिया गया । 87 बिरसा अनुयायियों को दौरा सुपुर्द किया गया । इनमें से दो को फाँसी और शेष को विभिन्न अवधि के लिए काला पानी की सजा सुनाई गई । हाई कोर्ट में अपील के बाद कुछ की रिहाई और कुछ की सजाएँ कम हुई । बिरसा के षड्यंत्र में मदद करने के आरोप में कुछ ''मानकियों''[12] और जो राजभक्त प्रमाणित हो चुके थे उन्हें अपने पदों पर पुनः स्थापित कर दिया गया था ।

1885 से 1921 तक के संपूर्ण काल में जो भी आदिवासी आन्दोलन हुए उनके प्रति प्रोग्रेस की किसी तरह की प्रक्रिया का कोई भी ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिलता । गाँधी के राष्ट्रीय आन्दोलन और असहयोग आन्दोलन के शुरू करने के ही काल में आदिवासी आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ सका । इस पर आदिवासी आन्दोलन विशुद्ध रूप से आदिवासी नेताओं और आदिवासी जनता का ब्रिटिश राज और उसके समर्थक जमींदारों और महाजनों के खिलाफ शोषित आदिवासियों का एक संघ स्थापित था जो औपनिवेशिक शासकों और उसे मदद करनेवाले वर्गों के खिलाफ लड़ा गया । आदिवासी आन्दोलनों की कमजोड़ी थी की यह एक सशस्त्र आन्दोलन था जिसमें सरकारी पुलिस का मुकाबला आदिवासी परंपरागत हथियारों से कर रहे थे । दूसरी तरफ उस काल की विकसित आर्थिक प्रबंधन की–जिसे अंग्रेजी राज्य ने भारत में कायम किया था, उसके विकल्प में आदिवासी प्राग–ऐतिहासिक आर्थिक प्रबंध को स्थापित करने का संघर्ष कर रहे थे, जिसे ऐतिहासिक विकास ने नकार दिया था । आदिवासी उत्पादन प्रणाली को उस काल के जरूरत के मुताबिक स्वरूप देने की

सैद्धांतिक समझ आदिवासी जमात में नहीं थी । इन सब कारणों से आदिवासी आन्दोलन बदलाव का वातावरण नहीं बना सकता । जब इसने राष्ट्रीय आन्दोलन से अपने को जोड़ा उस काल में भी कई वर्गीय प्रश्न कांग्रेस और आदिवासियों के बीच उठते रहते और कांग्रेस की नेतृत्व की रणनीति आदिवासी उत्थान की रणनीति से भिन्न रूप में चली । आज भी आदिवासी प्रश्न हल नहीं हो सके हैं ।

तानाभगत आन्दोलनः–

1914 के आसपास जब साम्राज्यवादी शक्तियों का आंतरिक अन्तरविरोध विश्व बाजार के पुनः बटवारे के लिए विश्व युद्ध के कगार पर आ गया था और 1914 में यह युद्ध भड़क उठा उसी समय छोटानागपुर के पश्चिम भाग में उरॉवों के बीच एक नई जागृति का संचार हुआ । युद्ध जनित कठिनाइयों के कारण ब्रिटिश सरकार और उसके समर्थक जमींदार वर्ग के शोषण का सिंकजा अन्य जगहों की भाँति छोटानागपुर के इस क्षेत्र में भी गहराता जा रहा था–आदिवासी अपनी जमीनों से जमीनदारों द्वारा बेदखल किया जा रहा था और ब्रिटिश सरकारी पुलिस उसकी मदद में अपने उत्पीड़न के विशेष तरीकों के द्वारा आदिवासियों का दमन कर रही थी । यह दमन खास कर युद्ध के खर्चों को जुटाने के लिए किया जा रहा था। इसी स्थिति में एक उरॉव भक्त, जिसका नाम जात्रा था और जो विषुनपर थाना के अंदर चिंगारी गाँव और गुमला जिला का निवासी था, उसने यह घोषणा किया की वह अपनी अन्तरदृष्टि में देखा है कि वह ''धर्मा'' या ''भगवान'' है जिसे अपने उरॉवों के लिए संदेश देना है ।उसका यह संदेश उरावं की बस्तियों में जल्द ही फैल गया और आदिवासी उसके दर्शन के लिए आने लगे ।

जात्रा का संदेश था कि उरावों का प्रधान देवता सूर्य भगवान का संदेश है कि उरावों को भूत–प्रेतों की पूजा करना, जानवरों की बलि देना आदि को सम्पूर्णता में छोना चाहिए, सादा और पवित्र जीवन बिताना, मांसाहरी भोजन न करना और मादक पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए । उरावों को जमीनदारों को टैक्स नहीं देना चाहिए और शत्रु राज के काम को भी कभी नहीं करना चाहिए । जात्रा ने यह चेतावनी दी थी की ''भगवान'' के इस आदेश का जो लोग पालन नहीं करेंगे उनका जल्द ही सर्वनाश हो जाएगा ।

जात्रा की इस संदेश के बाद उरावों ने जमींदारों को कर्ज अदा करना बंद कर दिया, ब्रिटिश राज्य के कानूनों और नियमों का उल्लंघन शुरू किया । सरकार जात्रा को गिरफ्तार कर सब–डिविजनल आदलत में लाया जहाँ उस पर मुकदमा चलाया गया और कारावास की सजा दी गई । कारावास की अवधि पूरा कर बाहर आने के बाद जात्रा की मृत्यु जल्द ही हो गई । जात्रा के अनुयायी अपने को ''तानाभगत'' कहे । ताना भगत का आन्दोलन यद्यपि एक नए धार्मिक, सांस्कृतिक परिवेश के साथ सामने आया फिर भी, उसपर राष्ट्रीय आन्दोलन के बहिष्कार आन्दोलन का असर दिखा । ताना भगत आन्दोलन की ब्रिटिश राज के आर्थिक

हितों पर सीधा हमला था और उनके सामाजिक आधार, जमींदारों के खिलाफ संघर्ष था । 20वीं सदी में ब्रिटिश राज्य ने जो एक गठबन्धन भारतीय सामन्तवाद और ब्रिटिश वित्तीय पूंजी के साथ किया था वह शोषण के नायाब तरीकों के द्वारा भारत की सम्पत्ति को लूट रहे थे और आदिवासी भी इस लूट से बाहर नहीं थे ।

तानाभगत आन्दोलन भारतीय सामन्तवाद और ब्रिटिश वित्तीय पूंजी दोनों को दुश्मन मान कर लड़ रहा था । इसके संघर्ष का राजनीतिक लक्ष्य एक सही सामाजिक प्रोग्राम पर उच्च स्तर का संघर्ष कर रहा था मगर उसकी विडम्बना यह थी की इस वर्गीय संघर्ष को चलाने के लिए जिस तरह के वर्ग दृष्टिकोण वाली राजनीतिक संगठन की जरूरत थी वह ताना भगतों के पास नहीं था । तानाभगत आन्दोलन का चरित्र एक राजनीतिक आन्दोलन का था मगर राजनीतिक संगठन के अभाव में लड़े जा रहे–धार्मिकता के आधार पर । धर्म और राजनीति का यह सहमेल आन्दोलन को एक संकुचित दायरे से आगे नहीं जाने दिया ।

1921 आते–आते ताना भगतों ने असहयोग आन्दोलन में अपनी राजनीति का मेल पाया और इसमें हिस्सा लिया। गाँधी और कांग्रेस के कार्यक्रमों में अपनी भागों का प्रतिबिम्ब देख कई तानाभगत कांग्रेस के महाअधिवेशनों में भाग लिये–यहाँ तक कि ऐसे अधिवेशन जो बिहार से बाहर भी हुए । यह तानाभगतों का ही प्रयास था कि कांग्रेस की सरकार जब बिहार में बनी तब सरकार ने खास बिल को पास किया : भगत एग्रीकल्चरल लैंड रिफार्म बिल ।

संदर्भ सूचीः

1. एस.सी.राय. द *मुण्डाज एण्ड देअर कन्ट्री*, राँची. 1912, एशिया पब्लिसिंग हाउस, बम्बे, 1970 री–प्रिंट, द्वारा उद्धृतः डॉ. के. के. दत्त, *बिहार में स्वतंत्र आन्दोलन का इतिहास*, बिहार हिन्दी ग्रंथ एकादमी, पटना भाग I (हिन्दी) तीसरा संस्करण फरवरी 2014 पृ. 105.

2. चलकद को डा. के. के. दत्त ने बिरसा का गाँव बताया है मगर ए. आर. एन. श्रीवास्तव ने विरसा की जन्म भूमि का नाम गेरविया उलहातु बताया है जो राँची शहर से 40 किलोमीटर दूर (खूँटी) में है और बिरसा मुन्डा को सुगना मुंडा का चौथा पुत्र बताया है ।

   डॉ० के. के. दत्त, *उपरोद्धृत,* पृ. 106.

   ए. आर. एन. श्रीवास्तव, *ट्रावल फ्रीडम फाइटर्स आफ इन्डिया,* भारत सरकार, मिनिस्ट्री ऑफ इन्फोरमेशन और ब्रोडकास्टिंग, जून, 1986 पृ. 17.

3. सरकारी वक्तव्य के अनुसार वह दिवार मिट्टी की थी जो गिरी थी। डॉ० के. के. दत्त, *पूवोद्धृत,* पृ. 106

4. *सरकार बनाम बिरसा मुण्डा औ अन्य 15 अभियुक्तों के मुकदमों में राँची के उपायुक्त का फैसला,* नवम्बर, 1895.

5. बिरसा के 15 सहयोगियों में थे–मोगा मानकी, सुगा, बीर सिंह, पाण्डु, शाही, डुगरा, सुसन्दर, दक्षिणी वौद, रसाई उर्फ मोसू, मची, कान्ता उर्फ सीमा, लुडडु मार्टिन, सहदेव माता उर्फ बीर सिंह, डॉ० के. के. दत्त, *पूर्वोद्धृत,* पृ. 107.

6. सरकार बनाम बिरसा मुण्डा और अन्य 15 अभियुक्तों के खिलाफ मुकदमा । *उपरोद्धृत* ।

7. *बंगाल एडमिन्स्ट्रेसन रिपोर्ट,* 1899–1900, पृ. 4

8. मुचराई टोंडू, *श्री बिरसा भगवान* पृ. 34.

9. *उपरोद्धृत* / पृ. 35

10. *सिंहभुम के उपायुक्त छोटा नागपुर के आयुक्त को पत्र,*6 अप्रील, 1900.

11. मुचराई टुंडू, *बिरसा भगवान,*पृ. 38

12. मानवियों ''सामाजिक या राजनीतिक कार्यों के लिए कुछ वस्तियों के नेता को कहा गया ।